International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(5): 28-31

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(5): 28-31
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-07-2018
Accepted: 19-08-2018

डा0 त्रिलोक नाथ झा
सहायक प्रोफेसर (साहित्य),
राजकुमारी गणेश शर्मा संस्कृत
विद्यापीठ कोलहन्ता पटोरी, दरभंगा,
बिहार, भारत

Correspondence
डा0 त्रिलोक नाथ झा
सहायक प्रोफेसर (साहित्य),
राजकुमारी गणेश शर्मा संस्कृत
विद्यापीठ कोलहन्ता पटोरी, दरभंगा,
बिहार, भारत

अविमारक में दलित-गाथा

डॉ. त्रिलोक नाथ झा

प्रस्तावना

''गुन्नरेव परंब्रह्म गुन्नरेव परागतिः।
गुन्नरेव पराविद्या गुन्नरेव परायणम् ।।
गुन्नरेव पराविद्या गुन्नरेव परं धनम
्यस्मात्तदुपदेष्टाऽसौ तस्माद् गुन्नतरो गुन्नः।।''

संस्कृत वाङ्गमय संसार की समस्त जातियों के प्राचीन वाङ्गमय की अपेक्षा विशाल और प्राचीनतम है। आज विश्व की सबसे पुरानी, फिर भी प्रासङ्गिकता की दृष्टि से नयी–नवेली संस्कृत भाषा अपने अन्दर अनन्त ज्ञान–विज्ञान संजोये, प्राकृत, पालि से लेकर अबतक की प्रायः समस्त भाषाओं को अनुप्राणित करने वाली यह दिव्य भाषा, अपने ही देश में उपेक्षित है, जैसे–विदेशी वस्तुओं के होड़ में स्वदेशी। कुटियों में लैंगोटी मात्र पर रहने वाले तपः पूत महर्षियों ने इस देस को चार वेद, चार उपवेद, छह वेदाङ्ग छह आस्तिक और तीन नास्तिक दर्शनशास्त्र, अठारह पुराण अठारह उपपुराण, 108 उपनिषद्, रामायण और महाभारत जैसे अनेक शिरोमणि ग्रन्थ–रत्नों के माध्यम से देश को जगद्गुरू–पद पर विभूषित किया है।
भारतीय मनीषियों के उदात्त मस्तिष्क ने सामाजिक विकास की दृष्टि से ही वर्ण–व्यवस्था की परिकल्पना की थी। यह व्यवस्था समाजशास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर विकसित हुई थी। इनके अनुसार समाज को ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र–इन चार वर्णा में विभाजित किया गया था। तत्कालीन समाज में समष्टि की भावना प्रबल थी, आज व्यष्टि की भावना का प्रसार अधिक दिखाई पड़ता है। चारों वर्णो के कर्तव्य व धर्म निश्चित किये गये थे। ऋग्वेद के पुरूष–सूक्त में समाज की, एक जीवत–जाग्रत शरीर के रूप में कल्पना की गई है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः मुख, भुजा,, उरू और चरण माना गया है–

''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।''

जिस प्रकार शरीर में मुख, हाथ, उरू और पैर का अपना–अपना अस्तित्व और महत्त्व है, उसी प्रकार चातुर्वर्ण्य भी समाज में आवश्यकतानुसार महत्त्वपूर्ण था। भगवान् कृष्ण ने भी गीता में अर्जुन से ऐसा ही कहा है कि चारों वर्णो की स्थापना मेरे द्वारा गुणों तथा कर्मो के आधार पर की गयी है–

''चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। [2]''

पुनः गीता के अठारहवें अध्याय में कहा गया है कि–

''बाह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। [3]''

अर्थात् हे परंतप! बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा विभक्त किये गये हैं।

स्मृतिवचनानुसार–

''जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्चते।''[4]

अर्थात जन्म से सभी शूद्र होते है, किन्तु संस्कार से द्विज कहे जाते हैं।

ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या करते हुए विशुद्धानन्द मिश्र शास्त्री का कथन है कि– ''ननु 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' इत्यत्र अजायत इति पदं जन्मना वर्णं साधयति, ओम् इति, शूद्रस्य तु अजायत इति प्रयोगेण ' जन्मना जायते शूद्र : 'इत्येव सिध्यति। यो गुणान् कर्माणि वा द्विजानां न धारयेत् स तु शूद्र एव।''

अत्र ब्राह्मणेन सह आसीत् क्षत्रिय वैश्याभ्यां कृतः इति अनुवर्तते,
शूद्रभवनाय न कश्चित् प्रयासोऽनुष्ठेयो भवतीति व्यज्यते।''[5]

अर्थात इस मन्त्र की सभी क्रियाओं पर ध्यान देने पर 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' यहाँ पर 'आसीत्' क्रिया है, इस पुरूष का मुखवत् मुख्य ब्राह्मण था , है और होगा भी । अब आगे पढ़ा हुआ 'कृतः आसीत्' किया गया है अर्थात ब्राह्मण भी किया गया, क्षत्रिय भी कर्म करने से हुआ और वैश्य भी कर्म करने से होता है लेकिन शूद्र कोई बनना नहीं चाहता। वह तो जैसा था, वैसा ही बना रहे तो शूद्र ही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में जाति–व्यवस्था नहीं थी, प्रत्युत् वर्ण–व्यवस्था थीए लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोग जाति–व्यवस्था और वर्ण–व्यवस्था में अन्तर नहीं समझ पाते हैं।

मनुष्य का जीवन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही सार्थक हैं मनुष्य की प्रकृति और संस्कृति के निर्माण में भी समाज का विशेष योगदान हैं जाति– व्यवस्था धार्मिक विश्वासो पर आधारित एक ऐसे आनुवंशिक संस्करण, अन्तर्विवाही तथा व्यावसायिक समूह की ओर संकेत करती है, जिसमें अनेक कर्मकाण्डों तथा संस्कारों द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का पूर्व से ही निर्धारण कर, उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन पर रोक लगा दी गई है। जन्म से ही व्यक्ति की असमान सामाजिक स्थिति में जाति ही कारण हैए तो किस प्रकार विभिन्न जातियों के बीच भ्रातृत्व की भावना का विकास सम्भव है? प्रस्तुत शोध–पत्र में महाकवि भासकृत रूपक 'अविमारक' में वर्णित दलित–वर्ग की सामाजिक स्थिति का सम्यक् अध्ययन कर, सामाजिक संरचना में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान की प्रमाणपुरस्सर स्थापना करने का प्रयास किया गया है।

संस्कृत काव्य को द्विधा विभक्त किया गया है–श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य। दृश्य काव्य के अन्तर्गत ही रूपक और उपरूपक परिगणित किये जाते हैं। भरतमुनि की दृष्टि में रूपक की उत्पत्ति का आदिम स्त्रोत भारतीय संस्कृति का मूल उत्स वेद ही है। उनके अनुसार चारों वेदों से एक–एक तत्व का संग्रहण करने से नाट्योत्पत्ति हुई है–

''जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थवणादपि।।''[6]

इस प्रकार भारतीय परम्परा में नाट्योत्पत्ति को आदि ग्रन्थ वेद से माना गया है। संस्कृत वाङ्गमय में रूपकों का विशाल साहित्य दीख पड़ता है। संस्कृत भाषा का नाट्य–साहित्य,भारतीय वाङ्मय की अमूल्य निधि है। भारतीय लोकमानस, लोकधर्म,लोकवार्ता एवं शास्त्रीय ज्ञान का जितना सम्यक् निरूपण संस्कृत रूपकों में दीख पड़ता है, साहित्य की किसी अन्य विधा में वेसा दृष्टिगोचर नहीं होता हैं इन नाट्यों में दलित–वर्ग का सम्यक् निरूपण किया गया है।

संस्कृत नाट्य–साहित्य में महाकवि भास आदिम नाट्यकार के रूप में मान्य हैंए क्योंकि भासपूर्व नाट्यकारों का केवल नामोल्लेख प्राप्त होता है, ग्रन्थ तो सर्वथा अनुपलब्ध है। महाकवि भास द्वारा रचित तेरह रूपकों में परिगणित 'अविमारक' छह अङ्कों का प्रकरण है। इसमें नाट्यकार ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है। भास ने प्रोक्त प्रकरण में कुछ ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिसकी गणना अन्त्यज में होती है। ये अस्पृश्य होने के कारण ग्राम और नगर से बाहर प्रच्छन्न रूप से निवास करते थे। इनकी छाया तक वर्जित थी। इनका कोई कुल नहीं होता था, ये कुल–विकल और कुलभ्रंश होते थे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इन्हें दलित कहा जा सकता हैं।

पुरातन संस्कृत साहित्य में दलित–वर्ग को शूद्र–वर्ण के रूप में वर्णित किया गया है। यह वर्ग सभ्यता के उषाकाल से ही शोषित एवं पीड़ित है। संस्कृत रूपकों में वर्णित दलित–वर्ग चारों वर्णो में अधम माना गया है। वे देवार्चन के समय वेद–मन्त्रों का उच्चारण किये बिना ही देवताओं को प्रणाम करते थे। अस्पृश्य होने के कारण इन्हें सवर्णो का सान्निध्य स्वीकार्य नहीं थाए लेकिन वे कुलीन व्यक्तियों के साथ आदरपूर्वक अभिभाषण आदि करते थे। वे अपना वर्ण परित्याग कर अनुलोम या प्रतिलोम विवाह नहीं कर सकते थे। भास के युग में वर्ण–व्यवस्था अधिक कठोर थी। वर्ण–व्यवस्था श्रम–विभाजन के आधार पर प्रतिष्ठित थी। वैदिक–युग में एक ही परिवार के अन्तर्गत कई वर्णो के लोग साथ–साथ रहते थे, ऊँच–नीच का भाव नहीं था। वर्ण परिवर्तन सम्भव व सरल था। तत्कालीन समाज तरलावस्था में थाय परन्तु उत्तरवैदिक युग में सामाजिक –वर्ग दृढ़ और स्थिर होने लगा। अब दलित –वर्ग व शूद्र –वर्ण का अर्थ समझना आवश्यक है।

'शूद्र'' शब्द शुच् धातु से रक् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। शूद्र–वर्ण अर्थात् हिन्दुओं के चार वर्णो में से अन्तिम वर्ण का पुरूष। 'दलित' शब्द दल् धातु से क्त् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है–टूटा हुआ,चीरा हुआ, फाड़ा हुआ,फटा हुआ, टुकड़े–टुकड़े हुआ और फैलाया हुआ। [7] दलित–समाज से तात्पर्य ऐसा समाज अभिप्रेत किया जाता है, जो उपेक्षित हो, अधीनस्थ हो, अप्रत्यक्ष या व्यवधानसहित हो। प्रस्तुत शोध–पत्र में महाकवि भासकृत रूपक 'अविमारक' में वर्णित दलित–वग्र की गाथा का चित्रण करना है, जो छह अड.को का प्रकरण है।

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार प्रकरण की कथावस्तु लौकिक एवं कवि कल्पित होती हैं मुख्य रस श्रृड.गार एव नायक कोई विप्र, आमात्य या वणिक होता है। महाकवि भास ने इस रूपक में चारों वर्णो के अतिरिक्त जो चाण्डाल के विषय में वर्णन किया है, जिससे प्रतीत होता है कि इसमें भी रूप, ज्ञान, बल तथा सम्पत्ति से युक्त व्यक्ति थे।

'अविमारक' के प्रथम अङ्क में ही कवि लिखते हैं कि

''दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं
क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च।
यद्येवं स्यात् सत्यमस्यान्त्यजत्वं
व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः ।।''[8]

अर्थात् उसके देवतुल्य रूप, बाह्मणों जैसी वाणी, क्षत्रियों जैसा तेज,कोमलता एवं शक्ति को देखकर भी यदि उसे अन्त्यज कहा जाय तो शास्त्राध्ययन में किया गया हमारा सारा परिश्रम बेकार ही है। इससे पूर्व कौ०जायन राजाज्ञानुसार उद्यान में राजकुमारी कुरङ्गी की देखरेख में जाता हैं वहाँ एक उन्मत्त हाथी से राजकुमारी कुरङ्गी को एक अज्ञात युवक द्वारा बचा लिया जाता हैं अमात्य कौ०जायन इस धटना का विवरण राजा को सुनाते हुए कहता है कि– ''स्वामिन् इह विसंवादयत्यात्मानमन्त्यजोऽहमिति'' [9] अर्थात् वह अपने को अन्त्यज कहकर अपने मूल वंश को छिपाना चाहता हैं इस पर महारानी कहती है– ''महाराज ! अकुलीनः कथमेवं सानुक्रोशो भवेत्'' [10] अर्थात् अकुलीन व्यक्ति इतना दयावान्

कैसे हो सकता है? इसके बाद भूतिक आश्चर्य के साथ कहता है कि – ''अहो! प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः। अस्य तावत् पुरूषस्य निर्व्याजेन विक्रमेण मन्दीभूता इव मनस्विनां विक्रमबुद्धयः। एकस्तु में संशयः, किमर्थमात्मानमन्वयं चाच्छादयति''[11] अर्थात् पृथ्वी में बहुत से रत्न छिपे पड़े हैं। इस पुरूष के निष्कपट पराक्रम से वीरों का बुद्धि–विक्रम मन्द पड़ गया है। मुझे एक ही सन्देह हो रहा है कि आखिर यह अपने को तथा अपने वंश को छिपा क्यों रहा है। तत्पश्चात् भूतिक पुनः कहता है कि– ''अथवा कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुमं इह हि''[12] अर्थात् 'अथवा सूर्य को हाथ से कौन ढँक
सकता है?

''छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरूषाः कथञ्चित्।
स्वैः कारणैर्गुरूजनैश्च नियम्यमानाः।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति।।'' [13]

अर्थात् सज्जन लोग विशेष कारणों एवं गुरूजनों के नियन्त्रण से अपने को छिपाये रखते हैय किन्तु दुसरों को विपत्ति में देखकर , उन्हें मुक्त करने के लिए अपने पुर्व नियम का परित्याग कर, स्वतः प्रकट हो जाते हैं।
जब राजा से भूतिक कहता है कि मैं उस पुरूष के वंश–वृत्त का पता लगाने गया था। इसे सुनकर राजा कहता है कि– 'श्रुतम स्माभिन्त्यज इति'[14] अर्थात् हमने सुना है कि वह अन्त्यज है। इस पर भूतिक उस पुरूष के पिता का वर्णन करते हुए राजा को कहता है कि–

''व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसो
ज्याघातप्रचितकिणेल्बणप्रकोष्ठः।
प्रच्छन्नोऽप्यनुकृतिलक्ष्यराजभावो
मेघान्तर्गतरविवत् प्रभानुमेयः।।[15]''

अर्थात् व्यायाम के कारण उनके कन्धे उन्नत, विशाल एवं दृढ़ हैं, मौर्विकर्षण के कारण उनके हाथों में धावों के अनेक चिह्न है। वह यद्यपि अपने को छिपा रहे है, किन्तु मेघण्डल द्वारा आच्छादित सूर्य की तरह ही कान्तिमात्र से ही उनके राजभाव का पता चल जाता है।
इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दलित–वर्ग में भी योग्य व्यक्ति का अभाव नहीं थाए लेकिन समाज में इनका स्थान अत्यन्त निम्न था।
''अविमारक' के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में ही विदूषक की यह उक्ति– ''भोः! न जानत्यवस्थाविशेषमीश्वरपुत्रा नाम। अतस्तत्रभवान् अविमारकः ऋषिशापेन कुलपरिभ्रंशमन्त्यजकुलप्रवासमात्मनो विज्ञानं गुरूजनं चाचिन्तयन् यदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुन्तिभोजदुहिता कुरङ्गी दृष्टा, तदाप्रभृत्यन्यादृश इव संवृत्तः। ही ही किं बहुना, मयापि सह गोष्ठीं नेच्छति, सर्वकाल चिन्तयन्नभिरमते। सत्यः खलु लोकप्रवादः 'संघचारिणोऽनर्था इति। कोऽत्र सम्बन्धः । सा राजदारिका स्वयमन्त्यज इति।''[16]
अर्थात् ये राजकुमार अवस्था–परिवर्तन को समझते ही नहीं। इसलिए यह अविमारक–कुलभ्रंश, अन्त्यजकुल–प्रवास,अपना ज्ञान एवं गुरूजन–सब कुछ भूलकर, जबसे हस्तिसंभ्रम के दिन कुन्तिभोज पुत्री कुरङ्गी दीख गई, तभी से कुछ अन्य प्रकार का ही हो गया है। हःहः और क्या, मेरे साथ भी नहीं बैठना चाहता हैं हमेशा चिन्तित रहा करता है। लोगों का यह कहना ठीक ही है कि अनर्थ हमेशा समुदाय में ही आता हैं इसमे क्या सम्बन्ध है? वह राजकुमारी है और आप स्वयं अन्त्यज हैं।
अविमारक के विषय में नलिनिका, धात्री से कहती है कि– ''किन्नु खल्वीदृशस्तादृशैर्गुणविशेषैरकुलीनो भवेत्''[17]
अर्थात् क्या ऐसा व्यक्ति इस प्रकार के गुणों से युक्त होता हुआ भी भला अकुलीन हो सकता है? इसे सुनकर धात्री कहती है कि– ''तत्र च सन्देहः । श्रुतं च मया भट्टिन्याः समीपेऽमात्यैः किल भणितं– न स तादृशः दुष्कुलज इति। आत्मानं केनापि कारणेन प्रच्छादयतीति।''[18]
अर्थात् उसमें सन्देह है, मैंने महारानी के पास मन्त्रियों से सुन रखा है कि वह उतने नीच कुल का नहीं है। अपने को किसी कारण से छिपा रहा है। नलिनिका और धात्री के इसी वार्ता के क्रम में नेपथ्य से आवाज आती है कि–

''यदि च विभवरूपज्ञानसत्वादयः स्यु–
र्न तु कुलविकलनां वर्तते वृत्तशुद्धिः।
ध्रवमिह कुलमस्य श्रोष्यसि प्राप्तकाले
त्यज कुलगतशङ्ा साध्यतां स्वन्तमेतत्।''[19]

अर्थात् यदि सम्पत्ति, रूप, ज्ञान, बल आदि हो भी जायए फिर भी अकुलीनों का चरित्र निर्मल नहीं हुआ करता है। निश्चय ही आप इसके कुल के विषय में समय आने पर सुन लेंगे । इस कार्य का अन्त भला होगा यह कार्य अवश्य करो।
षष्ठ अङ्क में नलिनिका द्वारा ज्ञात होता है कि– ''प्रेषितः खलु सौवीरराजस्यामात्यैर्दूतः– अस्माकं स्वामी युष्माकं नगरे सपुत्र–कलत्रः प्रच्छन्नः प्रतिवसतीत्यस्माकं गूढपुरूषवृत्तान्तो ज्ञायतां स्वामिनेतिः।''[20]
अर्थात् सौवीरराज के मन्त्रियों ने महाराज के पास दूत भेजा है, कहलाया है कि हमारे स्वामी, स्त्री–पुरूष के साथ छिपकर आपके नगर में रहते है। हमारे गुप्तचरों ने पता लगाया हैं आप भी जान लें।
षष्ठ अङ्क में ही सौवीरराज अपने चाण्डालत्व के विषय में कुन्तिभोज से कहता है कि किस प्रकार चण्डभार्गव नामक अति क्रोधी ब्रह्मर्षि मुझे शाप दिया था–

''अभाजनं त्वं तपसां प्रकोपाद्
बह्मर्षिरूपेण भवाञ्छ्वपाकः।।''[21]

अर्थात् सौवीरराज, चण्डभार्गव ऋषि को कहता है कि आप अतिशय रोष के कारण तपस्या के पात्र नहीं हैं, आप ब्रह्मर्षि के रूप में चाण्डाल है। यह सुनकर ब्रह्मर्षि की आँखे क्रोध के कारण जलने लगी और बार–बार सिर हिलाते हुए, शाप देना प्रारम्भ कर दिया–

''यस्मात् ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं श्वपाक इति भाषितः।
तस्मात् सपुत्रदारस्त्वं श्वपाकत्वमवाप्स्यसि।।'' [22]

अर्थात् तुमने मुझ ब्रह्मर्षि को श्वपाक कह दियाय अतः पत्नी एवं पुत्र के साथ तुम भी चाण्डाल हो जाओ। इसे सुनकर भूतिक कहता है कि–

'सभाग्यं सौवीरराजकुलम् । कुतः'
''ब्रहमर्षिणा प्ररूष्टेन श्वपाकत्वं तदा कृतम्।
तस्मात् तेनैव रूपेण न सर्व भस्मसात् कृतम्।।''[23]

अर्थात् सौवीरराज का वंश बहुत ही भाग्यवान् है, क्योंकि जिस क्रोध के वशीभूत हो ब्रह्मर्षि नें चाण्डाल होने का शाप दिया, उसी क्रोध के कारण सम्पूर्ण वंश को भस्म नहीं कर दिया। इसके बाद शापग्रस्त सौवीरराज के काफी अनुनय–विनय के पश्चात् ब्रह्मर्षि प्रकृतिस्थ हुए और कृपा करते हुए कहा–

''तावत् प्रच्छनन्रूपेण यावत् संवत्सरं व्रजेः।
ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि।।'' [24]

अर्थात् एक वर्ष तक चाण्डाल के रूप में छिपकर समय बिताओ। एक वर्ष पूरा हो जाने पर तुम शाप से मुक्त हो जाओगे।

इसके बाद अविमारक के न मिलने से सभी को कष्ट होता है। इसी समय देवर्षि नारद उपस्थित होते हैं, और कहते हैं कि – ततः सोऽपि ब्रह्मशापपरिभ्रष्टो हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुरङ्गी दृष्टवा समुत्पन्नाभिलाषः परेण पौरूषेण सङ्गम्य कुरङ्गया दर्शनशङ्कितैः कन्यापुररक्षिभी : परीक्ष्यमाणोऽग्निना भगवता प्रच्छादितो निर्गतः तेन निर्वेदेनाग्निं प्रविष्टः।'' [25] अर्थात् ब्रह्मर्षि के शाप से चाण्डालत्व को प्राप्त वह बालक हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के दिन कुरङ्गी को देखकर उस के प्रति साभिलाष हो गया। वड़े पराक्रम से उसने उससे साक्षात्कार किया। कन्यापुर के रक्षक उसके दर्शन से आतंकित हुए। अग्निदेव की सुरक्षा में वह कन्यापुर से निकल सका।

अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त नारद द्वारा प्रकट करने पर अविमारक लज्जित होकर, नारदमुनि को देखकर कहता है कि–

> ''शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धिर्वेदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः।
> स्निग्धेषु वैराण्युपपाद्य यत्नान्नष्टानि कार्याणि समीकरोति।।''[26]

अर्थात् शाप एवं कृपा में, समभाव से समर्थ हैं वेद एवं गीत मे इनका कण्ठ समान रूप से गाने का अभ्यस्त है। एक ओर जहाँ ये परस्पर प्रेमपूर्वक रहने वालों के बीच कलह उत्पन्न करते हैं, वहीं दूसरी ओर ये विगड़े हुए कार्यो को बना भी दिया करते है।

महाकवि भास ने इस प्रकरण में कैशिकी वृत्ति का प्रयोग किया है, जिससे लालित्य और विलास प्रकट हुआ है। गीत और नृत्य का प्रयोग प्रचुरता से पाया जाता हैं रूपक की समस्त कथावस्तु, चरित्र अर्थो और भावों का प्रकाशन अभिनय द्वारा सम्भव हैं देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अभिनय के साधनों और रूपों में परिवर्तन किया जा सकता है। इसमें नौ पुरूष पात्र हैं और बारह स्त्री पात्र। नाटक, काव्य तत्त्व और अभिनेय तत्त्व की दृष्टि से भी समृद्ध है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाकवि भास ने जगह–जगह पर दलितों के विषय में चित्रण किया है। यहाँ विचारणीय बिन्दु यह कि शापग्रस्त सौवीरराज, पुत्र एवं पत्नी के साथ चाण्डाल कुल में परिगणित हैं अथवा नहीं। नाट्यकार ने इस प्रकरण में दिखाया है कि शापित होने के बाद ये लोग प्रच्छन्न रूप से ग्राम एवं नगर से बाहर निवास करते हैं। इनमें शाप के समयावधि तक अन्त्यज के पूर्ण गुण को दिखाया गया है। यद्यपि रड.गम०च पर सौवीराज एवं अविमारक को ही दिखाया गया है, इनकी पत्नी को नहीं। ध्यातव्य है कि चाण्डाल को चातुर्वर्ण्य की श्रेणी से अलग दिखाया गया हैं अतएव इनमें चाण्डालत्व के पूर्ण गुण का समावेश होने के कारण, शाप के समयावधि तक, अन्त्यज की श्रेणी में निश्चित रू‍प से परिगणित होंगे। भास के काल में वर्ण–व्यवस्था दृढ़ था। जाति–व्यवस्था नहीं थी। अतएव व्यक्तियों के वर्ण, गुण एवं कर्म के आधार पर निश्चित होते थे। इसीलिए तत्कालीन समाज समुन्नत था।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक लोग 'दलित–साहित्य' एवं 'दलित–साहित्यकार' के रूप में सम्बोधित करते हैय लेकिन इन शब्दों का प्रयोग विद्वज्जन भी करते है। मेरे मानस में यह प्रश्न सहज ही उठता रहता है कि साहित्य भला दलित भी हो सकता है? साहित्यकार के निमित्त 'दलित' विशेषण का प्रयोग कितना समीचीन है? विद्वज्जन इसका निर्णय करेंगे। मुझे भी सामाहित होने की अपेक्षा है।

सन्दर्भ –ग्रन्थ सूची–एवं टिप्पणियाँ

1. 'ऋग्वेद'–10/90/12,
2. 'गीता'–4/13,
3. 'गीता' –18/41,
4. स्मृतिवचनानुसार।
5. 'वेदार्थ–कल्पद्रुम' (तृतीय खण्ड)–विशुद्धानन्द मिश्र शास्त्री,पुष्ठ–426,प्र0–आर्ष प्रचार ट्रस्ट 427, नया बाँस, दिल्ली–06।
6. 'नाट्यशास्त्र'–भरतमुनि, –1/17, प्र0–कृष्णदास अकादमी, वाराणसी–221001
7. 'संस्कृत–हिन्दी कोश'–वामन शिवराम आप्टे,पृष्ठ–1026
8. 'अविमारक'–महाकवि भास, 1/17, प्र0–कृष्णदास अकादमी, वराणसी–1995
9. वही, प्रथम अङ्क, पृष्ठ–14,
10. वही, प्रथम अङ्क, पृष्ठ–14
11. वही, प्रथम अङ्क, पृष्ठ–14–15,
12. वही, प्रथम अङ्क, पृष्ठ–15,
13. वही, 1/6,
14. वही, प्रथम अङ्क, पृष्ठ–17,
15. वही, 1/8,
16. वही, द्वितीय अङ्क, पृष्ठ–26–27,
17. वही,द्वितीय अङ्क,पृष्ठ–37,
18. वही, द्वितीय अङ्क,पृष्ठ–37,
19. वही, 2 /5,
20. वही, षष्ठ अङ्क,पृष्ठ–141–142,
21. वही, 6/5,
22. वही, 6/6,
23. वही, 6/7,
24. वही, 6/8,
25. वही, षष्ठ अङ्क,पृष्ठ–160–161,
26. वही, 6/16।